(Dec 2010). राजस्थान बनाम भारत संघ 1977 : संविधान बनाम राजनीति
International Journal of Economic Perspectives, 4(1), 113-118.
Retrieved from: https://ijeponline.com/index.php/journal/article

राजस्थान बनाम भारत संघ 1977 : संविधान बनाम राजनीति

डॉ. नीलम एसोसिएट प्रोफेसर राजनीति विज्ञान

बनवारी लाल जिंदल सुईवाला महाविद्यालय, तोशाम

संक्षेप

भारतीय संविधान में संघात्मक शासन प्रणाली की व्यवस्था की गई है, जिसमें संघ को राज्यों की अपेक्षा अधिक शक्तियाँ दी गई हैं। संविधान निर्माताओं का अटल विश्वास था कि सशक्त केन्द्रीकृत व्यवस्था ही देश की जटिल समस्याओं के समाधान में सक्षम हो सकती है। भारतीय संघात्मक व्यवस्था पर राष्ट्रपति की आपातकालीन शक्तियों ने सर्वाधिक घातक प्रहार किया है। संघीय सरकार को यह विवादास्पद शक्ति अनुच्छेद 356 के अन्तर्गत संविधान के माध्यम से प्राप्त हुई है। संविधान निर्माताओं द्वारा संविधान में अनुच्छेद 356 का प्रावधान इसलिए किया गया था ताकि विघटनकारी शक्तियों द्वारा उत्पन्न की गई आपातकालीन स्थितियों का सामना किया जा सके। संविधान के अनुच्छेद 356 के क्रियान्वयन ने संविधान निर्माताओं की दूरदर्शिता एवं आशंकाओं दोनों को ही सही प्रमाणित किया हैं। केन्द्रीय सरकार द्वारा, कई बार, राज्यों की जन-निर्वाचित सरकारों को अपदस्थ करने के लिए अनुच्छेद 356 का प्रयोग राजनैतिक vL= के रूप में किया गया। परिणामस्वरूप समय-समय पर राज्य सरकारों द्वारा अनुच्छेद 356 के तथाकथित उपयोग के विरुद्ध न्यायालय की शरण ली गई। प्रस्तुत शोधपत्र में अप्रैल 1977 में 6 राज्यों — राजस्थान, पंजाब, बिहार, उड़ीसा, मध्यप्रदेश एवं हिमाचल प्रदेश द्वारा केन्द्र सरकार द्वारा जन-निर्वाचित राज्य सरकारों को अनुच्छेद 356 के अन्तर्गत अपदस्थ करने के विरूद्ध सर्वोच्च न्यायालय में **मुकद्दमा** दायर करने पर सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर प्रकाश डाला गया है।

भूमिका

मार्च, 1977 के लोकसभा चुनाव में जनता पार्टी ने बहुमत प्राप्त किया तथा आजादी के पश्चात देश में पहली बार केन्द्र में गैर-कांग्रेसी सरकार सत्तासीन हुई। मार्च, 1977 के चुनाव में एक अभूतपूर्व राजनैतिक स्थिति सामने आई जिसमें 9 राज्यों — हरियाणा, पंजाब, हिमाचल प्रदेश, राजस्थान, मध्य प्रदेश, उत्तरप्रदेश, बिहार, पश्चिम बंगाल तथा उड़ीसा में मतदाताओं ने सत्ताधारी (कांग्रेस) दल के उम्मीदवारों को पूरी तरह से या लगभग पूरी तरह से नकार दिया। केन्द्र सरकार ने इसका अर्थ यह लगाया कि इन 9 राज्यों की सरकारों पर से मतदाताओं का विश्वास पूर्णतः उठ गया है। 18 अप्रैल 1977 को तत्कालीन गृहमन्त्री चरण सिंह ने इन 9 राज्यों के मुख्यमन्त्रियों को पत्र लिखा कि वे अपने राज्य में राज्यपाल को विधानसभा भंग करने एवं पुनः जनादेश प्राप्त करने की सलाह प्रदान करें तथा यदि वे (मुख्यमंत्री) केन्द्रीय सरकार के इस निर्देश का पालन नहीं करते तो राष्ट्रपति को यह अधिकार प्राप्त है कि वह इन 9 राज्यों में अनुच्छेद 356 के अन्तर्गत राष्ट्रपति शासन लागू कर दे। गृहमन्त्री ने आशा व्यक्त की कि इन राज्यों के मुख्यमन्त्री उनकी अपील को स्वीकार करेंगे।

24 अप्रैल को 20 कांग्रेसी सांसदों ने तत्कालीन कार्यवाहक राष्ट्रपति बी. डी. जत्ती से उनके निवास-स्थान पर भेंट की तथा उन्हें एक ज्ञापन सौंपा तथा निवेदन किया कि राष्ट्रपति 9 राज्य विधानसभाओं को भंग करके केन्द्रीय सरकार को अनुग्रहीत ना करे। ज्ञापन में आरोप लगाया गया कि केन्द्रीय सरकार चाहती है कि राज्य सरकारें

© 2010 by The Author(s). ISSN: 1307-1637 International journal of economic perspectives is licensed under a Creative Commons Attribution 4.0 International License.
Submitted: 27 Oct2010, Revised: 09 Nov 2010, Accepted: 18 Dec 2010

गैर-संवैधानिक एवं आत्मघाती कदम उठाएं जिसके लिए मुख्यमन्त्रियों ने, संविधान के अन्तर्गत, मना कर दिया है। 25 अप्रैल, 1977 को केन्द्रीय सरकार ने उत्तर-भारत के इन 9 राज्यों की विधानसभाओं को भंग करने के सन्दर्भ में अपना निर्णय लेना था। लेकिन 6 राज्यों - राजस्थान, पंजाब, बिहार, मध्यप्रदेश, हिमाचल प्रदेश एवं उड़ीसा ने केन्द्रीय सरकार के निर्णय के संवैधानिक औचित्य को चुनौती देते हुए अनुच्छेद 131 के अन्तर्गत उच्चतम न्यायालय में याचिका दायर कर दी।

राजस्थान बनाम भारत संघ, ए.आई.आर. (1977) 3 एस.सी. 1361 —

29 अप्रैल, 1977 को मुख्य न्यायाधीश एच.एम. बेग कि अध्यक्षता में सात सदस्यीय खण्डपीठ ने, 6 राज्यों द्वारा भारत संघ के विरूद्ध दायर याचिका पर सुनवाई करते हुए अपना निर्णय दिया। मुख्य न्यायाधीश ने 3 वाक्यों का आदेश पढ़ते हुए कहा कि "हम सबका सम्मत विचार है कि याचिका रद्द की जानी चाहिए तदनुसार हम इसे रद्द कर रहें हैं और परिणामतः अन्तर्वर्ती आदेश की प्रार्थना को अस्वीकार करते हैं....।" न्यायालय द्वारा पूर्ण निर्णय, कारणों सहित, 6 मई, 1977 को दिया गया। जिसमें खण्डपीठ के प्रत्येक न्यायाधीश ने इस सर्वसम्मत निर्णय की पुष्टि के अलग-अलग कारण दिए। उच्चतम न्यायालय ने अपने निर्णय में कहा कि संविधान के 42वें संशोधन अधिनियम के अन्तर्गत राष्ट्रपति का समाधान, कि राज्य में सरकार संविधान के उपबन्धों के अनुरूप शासन संचालन नहीं कर सकती, अन्तिम एवं निश्चित होगा तथा किसी भी आधार पर जाँच योग्य नहीं होगा तथापि उन्होंने न्यायिक पुनर्निरीक्षण के सिद्धान्त को सर्वसम्मति से स्थापित करते हुए कहा कि यदि 'समाधान' असद्भावपूर्ण है अथवा पूर्णतया असम्बद्ध और असंगत तर्क पर आधारित है, तो उच्चतम न्यायालय को इसकी जाँच का अधिकार है।

मुख्य न्यायाधीश एच.एम. बेग ने कहा कि जब कभी संविधान के अनुच्छेद 356(1) के अन्तर्गत शक्ति प्रयोग द्वारा जारी की गई उद्घोषणा के विरूद्ध, न्यायालय में याचिका दायर की गई, तब सदैव यह निर्णय दिया गया कि, मूल कारणों की यथेष्टता जिस पर आदेश आधारित है, न्यायेत्तर है। किसी भी परिस्थिति के अन्तर्गत जारी की गई उद्घोषणा न्याय-योग्य नहीं है।

मुख्य न्यायाधीश ने कहा यदि वास्तव में यह कृत्य केन्द्रीय सरकार द्वारा विशेष आधार पर किया है जो कि अनुच्छेद 356 (1) के क्षेत्र से बाहर है तो उद्घोषणा असद्भावनापूर्ण होगी। इसलिए नहीं कि इसमें 'समाधान' को चुनौती दी गई क्योंकि यह अनुच्छेद 356 (1) से बाहर का विषय माना गया है। राष्ट्रपति के 'समाधान' के सन्दर्भ में उन्होंने आगे कहा कि यह कल्पना करना भी कठिन है कि अनुच्छेद 356(1) के कृत्य के आधार की जाँच कैसे की जा सकती है क्योंकि संविधान के अनुच्छेद 74(2) में व्यवस्था की गई है कि इस प्रश्न की किसी न्यायालय में जाँच नहीं की जाएगी कि क्या मन्त्रियों ने राष्ट्रपति को कोई सलाह दी, और यदि दी तो क्या दी।

मुख्य न्यायाधीश ने आगे कहा कि एक उद्घोषणा की अवधि कम से कम 2 मास और यदि संसद के दोनों सदन इसका अनुमोदन कर देते हैं तो इससे अधिक भी हो सकती है। यदि इस 2 मास की अवधि में ससंद उद्घोषणा को अस्वीकृत कर देती है, तब भी उद्घोषणा का जारी रहना 2 मास की अवधि के लिए वैध है। यहाँ तक कि यदि दोनों सदन उद्घोषणा को अस्वीकृत कर देते हैं, तो सरकार, जो कि अपदस्थ कर दी गई है अथवा विधानसभा जो

© 2010 by The Author(s). ISSN: 1307-1637 International journal of economic perspectives is licensed under a Creative Commons Attribution 4.0 International License.
Submitted: 27 Oct2010, Revised: 09 Nov 2010, Accepted: 18 Dec 2010

विघटित कर दी गई है, पुनःजीवित नहीं की जा सकती। न्यायाधीश ने पुनः बल देते हुए कहा कि न्यायालय केवल भंग करने के कानूनी अधिकार अथवा कानूनी बाधाओं से सम्बन्धित है।

न्यायाधीश पी.एन. भगवती और ए.सी. गुप्ता ने अपने संयुक्त विचार प्रकट करते हुए कहा कि यह ऐसा प्रकरण नहीं है जहाँ राज्य में सत्तारूढ़ दल को, लोकसभा चुनाव में, मात्र साधारण पराजय का सामना करना पड़ा हो, इसमें सत्तारूढ़ दल के प्रत्याशियों को पूर्णतया नकार दिया गया है। कुछ वादी-राज्यों में तो सत्तारूढ़ दल एक स्थान भी प्राप्त नहीं कर सका। जिस तरह से इन राज्यों में सत्तारूढ़ दल को इतनी बुरी तरफ से पराजय का सामना करना पड़ा है और जनता ने सरकार की नीतियों के विरूद्ध स्पष्ट रूप से अपनी अभिव्यक्ति प्रकट की है, यह जनता एवं सरकार के मध्य पूर्ण विमुखता का स्पष्ट लक्षण है। यह स्वतः सिद्ध है कि कोई भी सरकार, लोकतान्त्रिक व्यवस्था में कुशलता एवं प्रभावपूर्वक <+ax से कार्य-निष्पादन नहीं कर सकती, जब तक इसे जनता की सद्इच्छा एवं समर्थन प्राप्त न हो।

न्यायाधीश पी.एन. भगवती तथा ए.सी. गुप्ता ने, गृहमन्त्री द्वारा 9 राज्य सरकारों को प्रेषित निर्देश के सन्दर्भ में कहा कि इनमें से प्रत्येक राज्य का आरोप है कि गृहमन्त्री का निर्देश असंवैधानिक, गैरकानूनी तथा अधिकार-क्षेत्र से बाहर है तथा भारत संघ के इस निर्देश को प्रभावी करने से रोकने के लिए उच्चतम न्यायालय की निषेधाज्ञा आवश्यक है। न्यायाधीशों ने कहा कि हमें यह समझ नहीं आता कि ऐसी घोषणा अथवा आज्ञा से न्यायालय कैसे सुरक्षा प्रदान कर सकता है। गृहमन्त्री का निर्देश प्रत्येक वादी राज्य के मुख्यमन्त्रियों को, राज्यपाल से विधानसभा भंग करने की संस्तुति करने की, सलाह एवं सुझाव के अतिरिक्त कुछ नहीं है, इसको निर्देश की संज्ञा गलत दी गई है। इसके पीछे कोई संवैधानिक सत्ता नहीं है। केन्द्रीय गृहमन्त्री द्वारा हमेशा से ही राज्यों के मुख्यमन्त्रियों को सलाह एवं सुझाव दिए जाते रहें हैं और मुख्यमन्त्री ऐसी सलाह अथवा सुझाव को, जैसा वे उचित समझें, स्वीकार अथवा अस्वीकार कर सकते हैं। सलाह अथवा सुझाव का, मुख्यमन्त्रियों पर, बाध्यकारी प्रभाव नहीं है तथा इससे किसी कानून की अवहेलना भी नहीं होती। अतः यह कहना सम्भव नहीं है कि गृहमन्त्री चरणसिंह द्वारा जारी निर्देश असंवैधानिक,गैरकानूनी और अधिकार-क्षेत्र से बाहर है।

न्यायाधीश चन्द्रचूड़ ने इसी विषय पर अपने विचार प्रकट करते हुए कहा कि गृहमन्त्री का पत्र स्पष्ट और संशय रहित था और उन्हें, गृहमन्त्री के पत्र में वर्णित मामले की विश्वसनीयता की जाँच करने और उसमें वर्णित तथ्यों की सत्यता पर सन्देह करने का, कोई औचित्य दिखाई नहीं देता। न्यायाधीश ने आगे कहा कि इसलिए उन्हें इस प्रश्न की विश्वसनीयता की जाँच करने की आवश्यकता नहीं है कि क्या गृहमन्त्री के पत्र में वर्णित कारणों के अतिरिक्त भारत सरकार के पास, राष्ट्रपति को उद्घोषणा जारी करने की सलाह देने के, अन्य कारण भी थे। परन्तु यदि भारत सरकार द्वारा कारण प्रकट किए जाते हैं, जैसा कि उन्होंने वर्तमान प्रकरण में किया है, तो न्यायालय द्वारा सीमित उद्देश्य के सन्दर्भ में, कि क्या कारण-सम्भावित कृत्य से तार्किक सम्बन्ध पर संशय प्रकट करते हैं, न्यायिक जांच को रोका नहीं जा सकता।

न्यायाधीश मुर्तज़ा फ़जल अली ने अपने निर्णय में अभिनिर्धारित करते हुए कहा कि 9 राज्यों में कांग्रेस दल को भारी पराजय का सामना करना पड़ा है। जनता ने कांग्रेस दल के प्रति पूर्ण अविश्वास व्यक्त किया है। ये परिस्थितियां तार्किक हस्तक्षेप का आधार प्रदान करती हैं कि जनता ने निर्णय केवल उन प्रत्याशियों के लिए नहीं दिया

© 2010 by The Author(s). ISSN: 1307-1637 International journal of economic perspectives is licensed under a Creative Commons Attribution 4.0 International License.
Submitted: 27 Oct2010, Revised: 09 Nov 2010, Accepted: 18 Dec 2010

जिन्होंने लोकसभा चुनाव लड़ा था बल्कि यह निर्णय, चुनाव प्रक्रिया से पहले के 20 मास के दौरान, पूर्ण रूप से कांग्रेस सरकार की नीतियों और विचारधाराओं के लिए भी दिया है चाहे वह केन्द्र सरकार हो अथवा राज्य सरकार हो। इन परिस्थितियों में यह नहीं कहा जा सकता कि गृहमन्त्री द्वारा बताया गया हस्तक्षेप का कारण, कि राज्य सरकारों ने जनता का विश्वास खो दिया है, तर्कपूर्ण नहीं है तथा अनुच्छेद 356 के अन्तर्गत विधानसभाओं के विघटन के सम्भावित कृत्य से इसका कोई सम्बन्ध नहीं है। उन्होंने कहा कि यह किसी से भी पूछा जाए कि उपरवर्णित परिस्थितियों में और जिस तरह से जनता ने, आपातकाल और आपातकाल के बाद के समय के लिए कांग्रेस के विरूद्ध प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए जन-अधिदेश दिया है, तो क्या यह कहा जा सकता है कि केन्द्रीय सरकार, विधानसभाओं में पुनः चुनाव कराने के लिए, असंगत और अनुपयुक्त अथवा बाह्य उद्देश्यों से प्रेरित थी, तो उत्तर नकारात्मक ही आएगा।

न्यायाधीश पी. के. गोस्वामी ने अपने विचार प्रकट करते हुए राज्य के अधिकार तथा राज्य मन्त्रिमण्डल के अधिकारों में अन्तर स्पष्ट किया। उन्होंने कहा कि राज्यों की वर्तमान सरकारों के पद पर बने रहने के दावे से उत्पन्न विवाद और दूसरी ओर केन्द्रीय सरकार का राष्ट्रपति शासन लागू करने के कृत्य का अधिकार वास्तव में राज्य सरकार और भारत सरकार का विवाद है। निःसन्देह यह राज्य की सरकार के जन्म और मरण का प्रश्न है, परन्तु राज्य का नहीं, 'राज्य विधानसभाओं के विघटन के उपरान्त भी, जैसा कि इस समय की आवश्यकता के लिए संविधान में वर्णित है, राज्य में सरकार रहेगी।' न्यायाधीश ने आगे कहा कि 'संसदीय शासन प्रणाली में जब एक सरकार का स्थान दूसरी सरकार ले लेती हैं, राज्य की निरन्तरता नष्ट नहीं होती। सरकार के जीवन में ऐसा क्षण भी आ सकता है कि यह जनता का वास्तविक अर्थ में प्रतिनिधित्व करना बन्द कर दे और इसलिए, राजनैतिक और कानूनी सत्ता के रूप में, राज्य के हित दलीय हितों के आधार पर स्थापित सरकार से भिन्न हो सकते हैं।' न्यायाधीश ने कहा कि गृहमन्त्री के पत्र में वर्णित आधार कल्पना की उपज नहीं हो सकते जो असद्भावपूर्ण और असगंत हो। इन आधारों का अनुच्छेद 356 (1) के अन्तर्गत उद्घोषणा की विषयवस्तु के साथ तार्किक सम्बन्ध है।

इस प्रकार राजस्थान बनाम भारत संघ के इस वाद के अन्तर्गत 7 न्यायाधीशों की खण्डपीठ इन बातों पर सहमत थी कि —

(1) राष्ट्रपति की उद्घोषणा, संसद के अनुमोदन के बिना, 2 मास की अवधि के लिए वैध है।

(2) विधानसभा का विघटन करने के निर्णय के पीछे कार्यपालिका के कारण राजनैतिक है और उनका न्यायालय द्वारा निर्णय नहीं किया जा सकता।

(3) अनुच्छेद 356 के अन्तर्गत शक्ति प्रयोग करने के प्रयोजन के लिए समाधान का प्रश्न भी ऐसा ही है — जब तक कि यह दर्शित न कर दिया जाए कि कोई 'समाधान' नहीं था या 'समाधान' बाह्य आधारों पर आधारित था।

वस्तुतः सभी न्यायाधीशों ने तथ्यों के आधार पर यह अभिनिर्धारित किया कि यह निर्णय लेना सम्भव नहीं है कि सम्बन्धित राज्यों में संवैधानिक तन्त्र को निलम्बित करते हुए अनुच्छेद 356 के अन्तर्गत राष्ट्रपति का आदेश असद्भावपूर्ण था या बाह्य कारणों पर आधारित था। न्यायाधीशों का मानना था कि विधानसभा भंग करना और पुनः चुनाव करवाना या उन्हीं विधायकों को विधानसभा में बनाए रखना (एक निश्चित अवधि के लिए) लोकतन्त्रीय व्यवस्था

© 2010 by The Author(s). ISSN: 1307-1637 International journal of economic perspectives is licensed under a Creative Commons Attribution 4.0 International License.
Submitted: 27 Oct2010, Revised: 09 Nov 2010, Accepted: 18 Dec 2010

के अन्तर्गत ये सभी कृत्य राजनैतिक रणनीति है। भारतीय व्यवस्था के अन्तर्गत राजनैतिक दलों के निर्माण के माध्यम से शक्ति प्राप्त करना कानूनी रूप से सम्मत है। अतः एक राजनैतिक दल द्वारा अधिक राजनैतिक शक्ति प्राप्त करने का प्रयास संवैधानिक रूप से निषेध नहीं है और न ही गैर-कानूनी है। अतएव केन्द्रीय सरकार का विधानसभाएं भंग करने का, कृत्य संवैधानिक रूप से वैध है।

निष्कर्ष

सर्वोच्च न्यायालय ने राज्यों द्वारा अनुच्छेद 131 के अन्तर्गत निषेधाज्ञा जारी करने की प्रार्थना को अस्वीकृत करते हुए याचिका रद्द कर दी। सर्वोच्च न्यायालय ने अपने निर्णय में कहा कि न्यायालय द्वारा, अनुच्छेद 356 (1) के अन्तर्गत शक्ति प्रयोग के सम्बन्ध में, तब तक हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता जब तक इस उपबन्ध को विशिष्ट परिस्थितियों में इस प्रकार लागू न किया गया हो कि वह अनुचित तथा विकृत प्रतीत होता हो और जिससे इस उपबन्ध का दुरुपयोग होता हो। केवल यह कहा जा सकता है कि संविधान के अनुच्छेद 356 (1) अन्तर्गत ऐसा तभी किया जाना चाहिए जब "संकटपूर्ण स्थिति" उत्पन्न हो गई हो। किन्तु प्रश्न यह है कि क्या राज्य विधानसभा तथा राज्य सरकार को जनता ने पूर्णतः तथा स्पष्टतः अस्वीकार कर दिया है और "संकटपूर्ण स्थिति" उत्पन्न हो गई है ? निःसन्देह इस सम्बन्ध में निर्णय लेना कार्यकारी सत्ता पर निर्भर करता है।

वस्तुतः संघात्मक व्यवस्था में केन्द्र एवं राज्यों में अलग-अलग राजनैतिक दल की सरकार होने पर प्रतिबन्ध नहीं है। इसके अतिरिक्त जिन eqn~nksa पर लोकसभा चुनाव लड़ा गया, वे eqn~nas विधानसभा चुनाव के समय नहीं थे। लोकसभा चुनाव के eqn~nas राष्ट्रीय प्रकृति के होते हैं जबकि विधानसभा चुनाव में स्थानीय eqn~nsa ज्यादा महत्वपूर्ण होते हैं। निःसन्देह लोकतन्त्र का यह सिद्धान्त है कि उसी सरकार को सत्ता में रहने का अधिकार है जिसे जनता का विश्वास प्राप्त हो लेकिन अप्रत्यक्ष प्रजातन्त्र के अन्तर्गत हमारे संविधान में स्विटज़रलैण्ड की भाँति विधायकों के प्रत्याह्वान का प्रावधान नहीं है। अतएव "केन्द्रीय सरकार द्वारा, राज्य में सत्तारूढ़ दल लोकसभा चुनाव में पराजित हुआ है, इस आधार पर अनुच्छेद 356 के अन्तर्गत शक्ति प्रयोग द्वारा राज्य सरकार को अपदस्थ करना अनुपयुक्त है"— ऐसा सरकारिया आयोग ने भी माना। यह न केवल संघात्मकता के लिए भयावह है अपितु देश में लोकतन्त्र की स्थिरता के लिए भी घातक है। निःसन्देह संवैधानिक व्यवस्था के संचालन में राजनीति के प्रयोग की अपरिहार्यता से इंकार नहीं किया जा सकता। अनुच्छेद 356 के संवैधानिक एवं राजनीतिक प्रयोग को पृथक नहीं किया जा सकता।

सन्दर्भ

भारत का संविधान (1 जून 1996 को यथा विद्यमान), विधि और न्याय मंत्रालय, विधायी विभाग, नई दिल्ली, 1996.

कमीशन ऑन सेन्टर-स्टेट् रिलेशनस् (सरकारिया आयोग),गवर्नमेन्ट ऑफ़ इण्डिया प्रेस, नासिक, 1988.

इण्डिया टुडे (न्यू दिल्ली)

इकॉनामिक एंड पॉलिटिक़ल वीकली (बाम्बे)

डेटा इण्डिया (न्यू दिल्ली)

© 2010 by The Author(s). ISSN: 1307-1637 International journal of economic perspectives is licensed under a Creative Commons Attribution 4.0 International License.
Submitted: 27 Oct2010, Revised: 09 Nov 2010, Accepted: 18 Dec 2010

लिंक (न्यू दिल्ली)

मेनस्ट्रीम (न्यू दिल्ली)

प्रतियोगिता दर्पण (आगरा)

पॉलिटिक्स इण्डिया (न्यू दिल्ली)

फ्रन्ट लाइन (मद्रास)

अमृत बाजार पत्रिका (कलकत्ता)

आसाम ट्रिब्यून (गुवाहाटी)

इण्डियन एक्सप्रेस (न्यू दिल्ली)

टेलीग्राफ (कलकत्ता)

द टाइम्स ऑफ़ इण्डिया (न्यू दिल्ली)

द ट्रिब्यून (अम्बाला, चण्डीगढ़, दिल्ली)

द स्टेट्समैन (न्यू दिल्ली)

द हिन्दु (मद्रास, दिल्ली)

द हिन्दुस्तान टाइम्स (न्यू दिल्ली)

नेशनल हैराल्ड (न्यू दिल्ली, लखनऊ)

नादर्न इण्डिया पत्रिका (इलाहाबाद)

पैट्रिअट् (न्यू दिल्ली)

सर्चलाइट (पटना)

संडे स्टैन्डर्ड (न्यू दिल्ली)

नवभारत टाइम्स (नई दिल्ली)

दैनिक जागरण (नई दिल्ली, हिसार)

हितवाद (नागपुर)

© 2010 by The Author(s). ISSN: 1307-1637 International journal of economic perspectives is licensed under a Creative Commons Attribution 4.0 International License.
Submitted: 27 Oct2010, Revised: 09 Nov 2010, Accepted: 18 Dec 2010